१३९-गाथा।

**विवरीयाभिणिवेसं परिचत्ता जोण्हकहियतच्चेसु।**
**जो जुजंदि अप्पाणं णिय-भावो सो हवे जोगो।।१३९।।**

**विपरीत आग्रह छोड़कर श्री जिन कथित जो तत्त्व हैं-**
**जोड़े वहाँ निज आतमा, निजभाव उसका योग है॥१३९॥**

**टीका : यहाँ, समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव आदि...** आचार्यों। उन्होंने **जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में...** भगवान ने कहे हुए तत्त्व, ऐसा नहीं कहा, क्योंकि भगवान की परम्परा से आया है, इसलिए **समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेश रहित...** भगवान ने जो तत्त्व कहे, उनका विपरीत आग्रह छोड़कर। आहाहा! जिस समय जिस द्रव्य की पर्याय होनेवाली है, जो स्वतन्त्र है; निमित्त भले हो, परन्तु निमित्त से यहाँ होता नहीं। ऐसा तत्त्व गणधरों ने, मुनिराजों ने जगत को कहा है। उस तत्त्व को जानकर उस तत्त्व में, आत्मा में जोड़ दे। आहाहा! **विपरीत अभिनिवेश रहित आत्मभाव...** मुनिनाथों ने कहे हुए तत्त्व। इसका अर्थ इतना है कि दिगम्बर मुनियों ने कहे हुए तत्त्व। गणधरों से लेकर, जिनमुनिनाथ कहा न?

**मुमुक्षु :**- गणधर को तो दोनों मानते हैं, श्वेताम्बर भी मानते हैं।

---

१- देह सहित होने पर भी तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है, इसलिए वे सकलजिन हैं।

२- उपजीवक=सेवा करनेवाले; सेवक; आश्रित; दास।

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** यहाँ श्वेताम्बर की बात है ही नहीं। जिनवर ने कहे हुए तत्त्व, वह दिगम्बर में ही है। दिगम्बर ही परम्परा से चला आया है। आहाहा! जगत को कठिन (लगे)। इसलिए कहा कि गणधरदेव और जिनमुनियों। जिनमुनियों कौन? वस्त्रवाले? एक ओर वस्त्रवाले को निगोदगामी कहते हैं और एक ओर वस्त्रवाले का कहा मानना, ऐसा आवे? कठिन बात है, भाई! आहाहा! क्षण में चला जाना है। कोई है? कल देखो न! सवेरे इनके दामाद मिलने आये, ऐसा कहते हैं। उन्हें मिलते थे, यहाँ बैठते थे। वहाँ ऐसा हो गया। मूल तो हार्टअटेक। आहाहा! महिलायें यहाँ नहीं आयी होंगी। तब निकाला होगा। नौ से पहले गुजर गये। आहाहा! छह घण्टे तक। उसमें असंख्य सम्मूर्च्छन होते हैं। पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन मनुष्य कलेवर में असंख्य होते हैं। वीतराग ने ऐसा कहा है - ऐसा कहा न? **गणधरदेव आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों...** आहाहा!

**मुमुक्षु :-** कुन्दकुन्दाचार्यदेव इत्यादि आना चाहिए न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** सब शामिल ही हैं इसमें। सब इकट्ठे कहे न।

**जिनमुनिनाथों...** शब्द कहा। जिनमुनिनाथ कौन? दिगम्बर मुनि। गणधर से पश्चात चले आये दिगम्बर सन्त। आहाहा! उनके कहे हुए तत्त्व, उनकी परीक्षा करनी पड़ेगी न? कि ये तत्त्व, उन जिनमुनि के कहे हुए हैं? या ये तत्त्व कल्पित किये गये हैं? आहाहा! देह छोड़कर क्षण में चला जाना है। उसमें आग्रह करेगा, वह अवतार सब बिगड़ जायेगा। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं जिनमुनिनाथ, गणधरदेवों ने कहे हुए तत्त्व। तब उसमें क्या आया? जिनमुनिनाथ ने ऐसा कहा है पात्र रखने का, वस्त्र रखने का? आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई!... अभिग्रह अर्थात् आग्रह। यहाँ कहा न? आग्रह, विपरीत अभिनिवेष। आहाहा! जिनमुनिनाथों, गणधरों आदि ने जो तत्त्व कहे—देव-गुरु-शास्त्र, नवतत्त्व, इनके अतिरिक्त दूसरे चाहे जितने कहनेवाले हों। आहाहा! उनके तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेषरहित। उससे उल्टा जो अभिनिवेष-अभिग्रह-आग्रह-उससे रहित। आहाहा! उनकी परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं? या परीक्षा किये बिना वीतराग की यह वाणी है या किसी की कल्पित की हुई है? आहाहा!

**मुमुक्षु :-** परीक्षा करने के लिये अभ्यास करना पड़ेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** अभ्यास करने के लिये तो बात करते हैं।

**समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव...** देखा न ? इतनी तो बात की है। **समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव...** आहाहा ! **आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेश ( आग्रह ) रहित आत्मभाव...** आहाहा ! भेद और विकल्परहित आत्मा का तत्त्व कहा है। और उस तत्त्व की जिस समय में पर्याय होनी है, वह होती है, ऐसा जिननाथ ने कहा है; उसकी दृष्टि पर्याय पर न जाकर द्रव्य पर जाती है। आहाहा ! जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। उसे किसी की सहायता या दूसरे की आवश्यकता नहीं है। ऐसा जो आग्रह छोड़ता है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। आहाहा ! ज्ञायकभाव पर जाती है, तब उसे आत्मभाव होता है। और आत्मभाव ? तब आत्मभाव होता है। पर्याय में बात है न यह ? आत्मा है तो है। आहाहा ! पर्याय में आत्मभाव होता है। वह कब होता है ? कि सत्य तत्त्व दृष्टि में हो और असत्य का आग्रह छूट जाए, उसे आत्मा का जो स्वभाव है, उस पर्याय में उसका भाव आता है। आहाहा !

**यह आत्मभाव ही निश्चय-परमयोग है...** वही परम निश्चययोग है। आहाहा ! वीतराग-सर्वज्ञ, मुनिवरों, गणधरों आदि ने कहे हुए तत्त्वों का आग्रहरहित, जैसा है, वैसा जाननेवाला, उसे आत्मभाव होता है और वह आत्मभाव निश्चय परमयोग है। वही आत्मा के साथ जुड़ान है। आहाहा ! वाद-विवाद बढ़ गये, झगड़े बढ़ गये। आहाहा ! वास्तविक पंथ... प्रभु जो आत्मा है, उसकी जो दृष्टि होने पर, उसकी पर्याय में जो भाव होता है, वह निश्चययोग है। वह निश्चयधर्म और निश्चयधर्म, मोक्ष का कारण है। है न ?

**वही...** ऐसा। **आत्मभाव ही...** दूसरा नहीं। जो भगवान गणधरों ने, मुनिनाथों ने तत्त्व कहे; उन तत्त्वों में से आत्मभाव को निकालकर, वही आत्मभाव वीतरागस्वरूप विकल्परहित, वह निश्चययोग है। आहाहा ! वह निश्चय परमयोग है। सच्चा और परमयोग वह है। आहाहा ! बाकी जागत की कल्पनायें हैं। आहाहा ! **ऐसा कहा है।** देखा ! **निश्चय-परमयोग है, ऐसा कहा है।** आहाहा ! पाठ है न ? **णियभावो सो हवे जोगो।** है न चौथा पद ? **णियभावो सो हवे जोगो,** ऐसा कहा है। आत्मा का निर्विकल्प योग और राग के संयोगरहित (आत्मभाव)। क्योंकि योग है, वह तो आस्रव और पुण्य-पाप के विकल्प में वह सब जाता है। वह कोई आत्मतत्त्व नहीं है। इसलिए उस तत्त्व का लक्ष्य और आग्रह छोड़कर आत्मतत्त्व के अन्दर जाए, तब उसे पर्याय में आत्मपर्याय प्रगट हो, वही सच्चा

परमयोग है। निश्चय अर्थात् सच्चा परमव्यापार है। आहाहा! यह निश्चय सच्चा परमधर्म है। अब ऐसी बात! आहाहा!

**मुमुक्षु :**- सभी अपनी बात को परम सत्य ही कहे न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :**- कहे, ऐसा कहे परन्तु क्या हो? भाई!

यहाँ तो पंच महाव्रतधारी सन्त ऐसा पुकारते हैं और वह भी कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! उसमें यह बात आयी है। मैंने तो मेरे लिये बनाया है, तो उन्होंने तीर्थंकर परम्परा का जो मार्ग है, वह मार्ग बताया है। आहाहा! सम्प्रदाय में आकर भी अन्दर-अन्दर आग्रह छोड़े नहीं। आहाहा! अरे! देह तो चली जाएगी। नजरों से दिखायी दिया न, व्याख्यान में... आहाहा! व्याख्यान होने से पहले उनके दामाद आये थे। लड़की और दामाद दोनों। उन्हें यहाँ मिलने गये थे। वापिस आकर बैठे, वहाँ तक कुछ नहीं मिलता। आहाहा! एकदम असाध्य। कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! यह देह, उसके परमाणु, भिन्न-भिन्न प्रकार का परिणमन। आहाहा! वे आत्मा के रखने से नहीं रहते। आत्मा के फेरने से, बदलने से, परिणमाने से नहीं परिणमते। उनके समय की जो परिणमन की अवस्था... आहाहा! अरे! इसे अभिमान किसका?

जो यह देह है, धर्मी-मुनि को भी... आहाहा! सनतकुमार चक्रवर्ती मुनिराज मोक्ष जाने की तैयारी। उन्हें सात सौ वर्ष कोढ़ रोग। आहाहा! गलतकोढ़। अँगुलियाँ गले, अँगुलियाँ गले। आहाहा! यह जड़ की अवस्था। किसकी कैसे होगी, इसकी खबर बिना उसका आग्रह रखना नहीं। जैसे होने की उसकी पर्याय होगी। मैं तो उसका जानने-देखनेवाला हूँ। जो पर्याय होती है, उसे मैं दवा करके रोक सकूँगा और इसके इंजेक्शन देकर... आहाहा! छह इंजेक्शन दिये थे। छह इंजेक्शन! लाख दे तो भी क्या? आहाहा!

शरीर, यह मिट्टी की पर्याय जहाँ बदली, उसे कौन रोके? उसके समय की पर्याय वस्तु की वस्तु। वस्तु, उसे कहते हैं कि जो द्रव्य-गुण और पर्यायसहित हो। आहाहा! उस पर्याय को दूसरी पर्याय की मदद और सहायता है नहीं। आहाहा! एक क्षण में पलटकर चला जाए। आहाहा! ऐसा तत्त्व का वास्तविक स्वरूप जिसने जाना, उसे आत्मा पर दृष्टि जाती है। आहाहा! और उसे भव का भय लगता है। भव का डर लगता है। आहाहा! भवभयभीरु। अरे रे! कौन सा भव होगा? कहाँ होगा? आहाहा!

पहले आ गया है। इसमें भी पीछे है। आहाहा! २३३ कलश है। **संसार की घोर भीति से जीव नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** संसार की घोर भींति से। है? २३३ कलश। आहाहा! **संसार की घोर भीति...** कौन सी पर्याय कैसे होगी कब? आहाहा! उसका तू अधिकारी नहीं। आहाहा! है? **संसार की घोर भीति...** आहाहा! कब शरीर कैसा होगा? कब वाणी बन्द होगी? आहाहा! कब पक्षघात होगा? आहाहा! वह जड़ की अवस्था। भव भय से डरकर उन सब अवस्थाओं से उदास हो जा। आहाहा! मेरा प्रभु कहीं अटके, ऐसा नहीं है। आहाहा! कोई जड़ की चाहे जो पर्याय हो, परन्तु वह आत्मा को अटकने का कारण नहीं है। आहाहा! यह तो यहाँ बताया जरा इतना, हों!

**यह निश्चय-परमयोग है, ऐसा कहा है।** भगवान ने। आहाहा! तत्त्वों में तत्त्व आत्मा के अतिरिक्त उसकी अवस्था जिस समय में होनेवाली है, उस समय में होओ। मैं चैतन्यस्वरूपी परमानन्द परमस्वभावी वस्तु हूँ—ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसा मैं मानता हूँ। उसे यहाँ अन्तर में निश्चयपरमयोग है। आहाहा! यहाँ परमयोग है, वह निर्विकल्प आनन्द का झरना है। आहाहा! वह परमयोग जो कहा, वह अतीन्द्रिय आनन्द का झरना है, प्रभु! आहाहा! चाहे जो शरीर के संयोग बनो, परन्तु आत्मा की भावनावाले को अतीन्द्रिय आनन्द के झरने का वेदन होता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। किसके साथ वाद करे? यह कोई विद्वता की वस्तु नहीं कि हम बहुत पढ़े, इसलिए ऐसा है। बापू! यह तो वस्तु की मर्यादा भगवान ने ऐसी मर्यादा ही बतायी है। जैसी वस्तु की मर्यादा है, वैसी वस्तु की मर्यादा परमात्मा ने बतायी है। जड़ की पर्याय का काल जो है, उस वक्त, उस समय में उसकी पर्याय होगी ही। तेरे रोकने से नहीं रुकेगी। तेरी दृष्टि वहाँ से फिरा दे। आहाहा! तब वह तत्त्व की श्रद्धा यथार्थ कहलाये कि जो तत्त्व तुझमें नहीं, उसमें से दृष्टि फिरा दे। आहाहा! और जो आत्मतत्त्व है, उसमें दृष्टि लगा। आहाहा! वह ज्ञायकभाव है, परमपारिणामिक तत्त्व स्वभावभाव है, उस पर दृष्टि लगा और वह भाव हो, वह भाव निश्चयपरमयोग और आनन्द का झरना वहाँ है। वहाँ दुःख का अभाव-विश्राम है। वहाँ दुःख का अभाव है और आनन्द के झरने का सद्भाव है। आहाहा! ऐसा आत्मा कैसे जँचे? बाहर की दृष्टि में, बाहर के संयोगों की विचित्रता में जहाँ रुका है। बाहर के संयोगों में विस्मयता और आश्रय करके रुका है, उसे प्रभु की विस्मयता और आश्रयता कैसे आवे? आहाहा! उसे यहाँ परमयोग कहा। आहाहा!

**अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए...** देखा ? जरा सूक्ष्म बात है। आहाहा! **अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए ( -जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए )...** आहाहा! बहुत कठिन लगे। बापू! तेरे हित की बात है, भाई! विपरीत अभिप्राय छोड़ना, वह सुख का कारण है। विपरीत अभिप्राय; हम सम्प्रदाय में जन्में, इसलिए हमने माना हुआ भाव ठीक है—ऐसा आग्रह नहीं होता। आहाहा! वह आग्रह छोड़कर वीतराग कथित तत्त्वों, तीर्थनाथ ने कहे हुए - ऐसा आया न ? अन्य तीर्थनाथ ने कहे हुए का आग्रह छोड़ दे। आहाहा! यहाँ तो यह भी आया, प्रभु! क्या करें ? आहाहा! श्वेताम्बर ने भी कल्पित किये हैं, तो उनके भी तत्त्व की दृष्टि छोड़ दे। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे रे! दुःख लगे। सम्प्रदाय में जन्मे हों और वही पोसाया हो, उसे कल्पितमार्ग कहना, वह यह अन्य समस्त तीर्थनाथ ने (कहा हुआ मार्ग है)। आहाहा! वे वीतराग और गणधर तथा मुनियों ने कहे हुए तत्त्व नहीं हैं। आहाहा! श्वेताम्बर के और स्थानकवासी के जो तत्त्व हैं, वे भगवान के—जिननाथ के, तीर्थंकर के और सन्तों के नहीं हैं। आहाहा! वे तो गृहीत मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए तत्त्व हैं।

कठिन बात, प्रभु! वह सुखी होओ। वह दृष्टि छोड़कर सुखी होओ। इसके लिये तो कहा जाता है। वह दृष्टि रखोगे, प्रभु! तो दुःखी होओगे। आहाहा! विपरीत आग्रह रखोगे तो दुःखी होओगे और दुःखी का जीवन व्यतीत करना, बापू! आहाहा! जीव का एक क्षण का दुःख... आहाहा! कठिन पड़ता है। वह ३३-३३ सागर तक, एक बार नहीं, परन्तु अनन्त बार। उस भव का भय... आहाहा! उस सम्प्रदाय की दृष्टि अपनी रखकर, वीतराग ने नहीं कहे हुए, अन्य समय (मत) के तीर्थनाथ ने, **अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए...** बड़े पुरुष ने **( -जैनदर्शन के अतिरिक्त )...** आहाहा! दिगम्बर जैनदर्शन के अतिरिक्त दर्शन, जैनदर्शन है ही नहीं। आहाहा! कठिन पड़े।

**( -जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए ) विपरीत पदार्थ में...** आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने—मुनियों ने कहे हुए तत्त्वों के अतिरिक्त दूसरे कोई भी मुनियों ने नाम धराकर कहे हुए तत्त्व, उनका **विपरीत पदार्थ में अभिनिवेश-दुराग्रह...** आहाहा! ऐसा खुल्ला कहने पर दुःख होता है। बापू! तुझे सुख के पंथ में जोड़ने के लिये बात है, भाई! वहाँ किसी का भी पक्ष भी नहीं चलता। यहाँ देखो न! देह छूटने पर कैसा

हो जाता है। आहाहा! डाक्टर महिला ने आकर छह तो इंजेक्शन दिये। कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! अब यहाँ तो सुनने आवे बेचारा।

**मुमुक्षु :**- इंजेक्शन देने में भूल हुई हो तो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :**- इंजेक्शन दे कौन? स्पर्श करे नहीं और इंजेक्शन दे! आहाहा! इंजेक्शन शरीर को स्पर्श नहीं करता। शरीर की पर्याय जिस समय में है, उसे इंजेक्शन बदल नहीं सकता। आहाहा! इंजेक्शन की पर्याय है, वह पर्याय शरीर को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐसा वीतराग तत्त्व सूक्ष्म और ऊँचा, सत्य। आहाहा! परम सत्य है, यह परम सत्य है। आहाहा!

कहते हैं कि **अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए ( -जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए ) विपरीत पदार्थ में अभिनिवेश-दुराग्रह ही विपरीत अभिनिवेश है।** आहाहा! द्रौपदी को पाँच पति। मूल तो एक ही पति है। पाँच तो फिर कल्पित किये हैं। वह इसने.. कर रखे हैं श्वेताम्बरों ने तो। आहाहा! यह पूरी बात में अन्तर है। बहुत बातें, सैकड़ों-हजारों बातें। इन कहे हुए विपरीत पदार्थों में अभिनिवेश-दुराग्रह, वही विपरीत अभिनिवेश है। आहाहा! अब यह अभ्यास बिना विपरीत अभिनिवेश है, यह खबर किसे पड़े?

जिसे अभ्यास ही नहीं करना, वीतराग ने कहे हुए शास्त्र, दिगम्बर सन्तों ने कहे हुए तत्त्व का अभ्यास ही करना नहीं, उसे दुराग्रहपना कैसे उसे समझ में आवे? और दुराग्रह कहाँ से जाये? आहाहा! और यह उसके लाभ के लिये है, प्रभु! आहाहा! कोई प्राणी दुःखी हो, ऐसी भावना धर्मी को नहीं होती। आहाहा! सब तीर्थंकर... आहाहा! तीर्थ के नाथ के मार्ग को प्राप्त कर सब कर्मरहित होओ, सब भगवान होओ। आहाहा! किसी जीव को दुःख हो - ऐसी भावना धर्मी की नहीं होती। आहाहा! मात्र विपरीत अभिनिवेश के कारण, प्रभु! तुझे दुःख होगा। आहाहा!

**मुमुक्षु :**- इसके हित की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :**- हित की बात है।

**मुमुक्षु :**- खोजकर देख, बराबर है या नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** खोज करे, अभ्यास करे, कुछ मिलान-तुलना करे। यह तो माल लेने जाए, वहाँ तुलना करते हैं कि यह ज्वार सफेद है, परन्तु जरा सड़ी हुई है और यह ज्वार छोटी, परन्तु अच्छी है। ज्वार-ज्वार के रजकण का मिलान करते हैं। ज्वार समझते हो न? आहाहा! ज्वार। वह भी मिलान करते हैं, तब लेते हैं। आहाहा! अब वह तो एक अमुक दिन के आहार की चीज़ है। उसकी भी परीक्षा करके लेते हैं, तो यह तो अनन्त काल के भटकने की चीज़ छोड़नी है, भटकने की छोड़नी है। आहाहा!

किसी भगवान आत्मा को दु:ख हो-ऐसी विचारणा समकिती को नहीं होती। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में कहा है न? अवाय के विचार में। आहाहा! क्या मुनियों की विशालता! सत्य बताया, तो भी विशालता! सब मुनि, सब आत्मायें आठ कर्म से रहित होओ। कोई आत्मा कर्मसहित न रहो। आहाहा! प्रभु! तू कर्म-परद्रव्य सहित होगा, तो दु:खी होगा और वह दु:ख का वेदन तुझे कठोर पड़ेगा, प्रभु! जीवते यह वेदन आवे। आहाहा! शरीर में दाह आवे, दाह। वह है न बहिन यहाँ? 'ललिता भावसार'। पूरे शरीर में दाह आती है। ललिता, जामनगरवाली भावसार। आहाहा! भावसार न? भाई वहाँ गये थे। चन्दुभाई गये लगते हैं। वह तो वैराग्य का समय था। आहाहा! एक-एक समय अमूल्य है। इस समय में दुराग्रह पकड़ा, उसे छोड़ देना चाहिए। सत्य बात कान में पड़ने पर तुलना करके असत्य के आग्रह को छोड़ देना चाहिए, ऐसा कहते हैं। देखो न!

**वही विपरीत अभिनिवेश है। उसका परित्याग करके...** आहाहा! है न? आहाहा! ऐसा जो विपरीत अभिनिवेश। आहाहा! **उसका परित्याग करके...** वापस त्याग करके - ऐसा नहीं। परित्याग अर्थात् समस्त प्रकार से। अब उसकी बात नहीं। आहाहा! दुनिया चाहे जो माने, चाहे जो माने। वस्तुस्वरूप तो भगवान जिनेन्द्र ने जो कहा है, उस बात की परम्परा दिगम्बर में रही है। महाविदेह में भी यह मार्ग चलता है। आहाहा! दूसरा मार्ग कहीं नहीं है। तीन लोक के नाथ विराजते हैं। सीमन्धर भगवान, लाखों केवली, गणधर (विराजते हैं), वहाँ यह मार्ग चलता है। आहाहा! इससे विपरीत मार्ग का आग्रह, प्रभु! बहुत काल से पकड़ा हो, पचास वर्ष से, साठ वर्ष से। जिस कुल में जन्मा, उसमें पकड़ा हो और जिसका सहवास रहा हो, उसकी गन्ध रहे। आहाहा!

एक बात करते थे कि सन्दूक में वह कस्तूरी पड़ी थी, कस्तूरी। उस दूसरी चीज़

में गन्ध आ गयी। वीरजीभाई कहते थे। वीरजी वकील। सन्दूक में कस्तूरी का डिब्बा पड़ा था और दूसरी चीज़ें पड़ी थीं। उस कस्तूरी की गन्ध दूसरी चीज़ों में घुस गयी। सन्दूक में कस्तूरी पड़ी थी। वीरजीभाई कहते थे। उसकी गन्ध दूसरी चीज़ को लागू पड़ गयी। आहाहा! इसी प्रकार जिसे जिसका सहवास, जिसे जिसका परिचय, उसकी गन्ध उसे चढ़ जाती है। आहाहा! कठिन पड़े, प्रभु!

यह कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं मेरे लिये यह कहता हूँ। मैंने मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! यह अभिनिवेश **उसका परित्याग करके जैनों द्वारा कहे हुए तत्त्व...** परन्तु जैन किसे कहना? बापू! इसे पहिचानना चाहिए न? जैन नाम तो सब धराते हैं। आहाहा! राग को जीते, वह जैन। राग से लाभ मनावे, वह जैन नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग... आहाहा! उससे लाभ मनावे। यह प्ररूपणा करते हैं न अभी? आहाहा! व्यवहार से लाभ होता है। अभी ज्ञानमति आर्यिका है न? वह पुण्यवन्त लगती है, बड़ा पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप दिल्ली में किया और यहाँ बड़ा मेरुपर्वत किया। अस्सी फीट का लम्बा। इतना पैसा। परन्तु उससे क्या? बापू! आहाहा! बाहर की चीज़ें हो जाए, उससे आत्मा को क्या? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **जैनों द्वारा कहे हुए तत्त्व...** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की परम्परा में जो आये हुए तत्त्व.. आहाहा! **निश्चयव्यवहारनय से...** वे तत्त्व भी निश्चय-व्यवहारनय से। निश्चय से स्व से है; व्यवहार में निमित्त साथ में होता है। निमित्त नहीं है, ऐसा नहीं है, परन्तु निमित्त से होता नहीं। आहाहा! इसलिए निश्चय और व्यवहार, दोनों मानने योग्य है, परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है - यह माननेयोग्य नहीं है। व्यवहार और निश्चय दोनों है - ऐसा माननेयोग्य है। है - ऐसा। आहाहा!

**निश्चयव्यवहारनय से जाननेयोग्य हैं,...** यहाँ तो कहा न? व्यवहारनय से भी जाननेयोग्य है। व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। (समयसार की) १२वीं गाथा में कहा है, लो! आहाहा! व्यवहार नहीं है - ऐसा नहीं है। व्यवहार है, होता है। ज्ञानी को भी राग-व्यवहार आता है। आहाहा! परन्तु वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं है। अर्थात् जाना हुआ है - ऐसा भी निर्णय हो गया और एक आदरनेयोग्य निश्चयनय है। दो नय है। एक नय नहीं है। वीतरागमार्ग में दो नय है। पंचास्तिकाय में,

नियमसार में पहले बहुत लिया है। दो नय है; एक ही नय नहीं है। व्यवहारनय नहीं है - ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु व्यवहारनय है, वह जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। नय नहीं है - ऐसा नहीं है। वीतरागमार्ग में निश्चय और व्यवहार दोनों नय है। आहाहा!

**मुमुक्षु :-** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** नय है न? और वह सम्यक् नय है। व्यवहार भी जैसा व्यवहार है, वैसे जानना, वह सम्यक् नय है। आदरनेयोग्य नहीं है। आहाहा! आदरनेयोग्य होवे तो दो (भेद) पड़े क्यों? निश्चय आदरनेयोग्य, व्यवहार आदरनेयोग्य होवे तो एक ही हो जाए। आहाहा! एक आदरनेयोग्य है और एक जाननेयोग्य है। दो नय है।

**निश्चयव्यवहारनय से जाननेयोग्य हैं,...** व्यवहार से जाननेयोग्य है। योगीन्द्रदेव दोहों में तो यहाँ तक (कहते हैं), प्रयत्न से छह द्रव्यों को जानना। प्रयत्न आता है। व्यवहार जाननेयोग्य है न? जाननेयोग्य नहीं तो वस्तु-पर्याय नहीं, राग भी नहीं, दूसरी चीज़ ही नहीं (-ऐसा हो जाए, परन्तु) ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु इतना अधिक विचार करने का में रुके कौन? निवृत्ति कहाँ है? आहाहा! एक क्षण में चला जाना है। ऐसे फू होकर। देखा न? अब बैठते हैं यहाँ। फिर मेरी नजर ऐसे गयी कि यह ऐसे कैसे हो गया? तब दूसरों ने देखा। ऐसे कैसे हो गया? कारण कि अन्दर हार्ट वह (फेल) हो गया। असाध्य शुरु हो गयी। आहाहा! कुर्सी पर बैठे थे। आहाहा! ऐसे तो अनन्त बार अनन्त मरण हो गये। आहाहा! लाख इन्द्र उतरे तो भी इसकी एक पर्याय बदले (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! इन्द्र मित्र हों। आहाहा! तो भी कुछ बदले, ऐसा कुछ है? आहाहा!

ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारे। भरतजी गये, इन्द्र आये। आहाहा! अष्टापद पर्वत के ऊपर। भरत ऐसा देखकर रोते हैं। इन्द्र कहता है कि अरे भरत! यह क्या? तुम्हें तो इस भव में मोक्ष है। हमें तो अभी एकाध भव मनुष्य का करना पड़ेगा - इन्द्र कहता है। तुम्हें तो इस भव में मोक्ष है और यह क्या? इन्द्र! जानता हूँ मैं सब। खबर है, परन्तु राग आया है। वह जाननेयोग्य है। आहाहा! भगवान ऐसे मोक्ष पधारे। शरीर (नख-केश) ऐसे पड़ा है। इन्द्र और भरत दोनों ऐसे देखते हैं। भरत को ऐसे आँख में से अश्रु बहते हैं। अरे रे! आज भरत के सूर्य अस्त हो गया। भरत का सूर्य अस्त हो गया - ऐसा करके राग-विकल्प है। आहाहा! तथापि इन्द्र कहता है कि परन्तु तू इस भव में मोक्ष जाएगा। सब खबर है, बापू!

मेरा मोक्ष इस भव में है, यह मेरे अन्तिम देह है। खबर है। परन्तु राग आया है, उसका यह खेल है। यह राग मेरा नहीं है। मैं जानता हूँ। आहाहा!

**निश्चयव्यवहारनय से जाननेयोग्य हैं,...** आहाहा! **सकलजिन...** सकल अर्थात् देहसहित। देहसहित जिन **देह सहित होने पर भी तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है, इसलिए वे सकलजिन हैं।** सम्पूर्ण रीति से जीते हैं। इस प्रकार से गिना। वरना सकल अर्थात् शरीरसहित भी होता है और सकल अर्थात् सब जीता है। आहाहा! राग-द्वेष को सबको सबको जीता है। इसलिए ऐसे **सकलजिन ऐसे भगवान...** आहाहा! यह विश्वास में, अन्तर में आना.. यह बातें कान में पड़े, सुने, जाने परन्तु अन्दर में विश्वास, परिणमन में विश्वास पर आना... आहाहा! यह अलौकिक चीज़ है और यह परिणमन में आये बिना जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा नहीं है, भाई! आहाहा!

**भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के...** आहाहा! सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरण कमल में **उपजीवक...** अर्थात् **सेवा करनेवाले; दास।** आहाहा! **वे जैन हैं;...** देखा? वाड़ा में जन्मे, इसलिए जैन हैं - ऐसा नहीं है। आहाहा! **सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के...** बिल्कुल राग जीता है। भगवान को आहार लेना, दवा लेना, यह राग भगवान को नहीं है। आहाहा! भगवान, मुनि को कहते हैं कि जा! मेरे लिये आहार लेकर आ। आहाहा! रोग है, उसे मिटा—यह सब बातें मिथ्या कल्पना है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **सकलजिन...** सकल का अर्थ शरीरसहित भी कहा जाता है, परन्तु यहाँ सकलजिन अर्थात् पूर्ण रीति से राग-द्वेष जीते हैं। आहाहा! है? **देह सहित होने पर भी...** सकल कहा न? **तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है, इसलिए वे सकलजिन हैं।** आहाहा! ऐसे सकलजिन भगवान को, उनके **उपजीवक...** उन्हें माननेवाले, उनके सेवक, उन्हें स्वीकार करनेवाले... आहाहा! उनके मार्ग में जानेवाले। आहाहा! ऐसे **उपजीवक, वे जैन हैं;...** वाड़ा में जन्मे, इसलिए जैन हैं - ऐसा नहीं है। आहाहा! जैन नाम धराया और हम जैन श्रावक हैं, हम जैन साधु हैं, वह नहीं। आहाहा! है?

**सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के उपजीवक...** उन्होंने कहा, उनके चरण कमल की सेवा करनेवाले, माननेवाले, दासानुदास होकर माननेवाले। आहाहा! भगवान ने जो कहा, उसे दासानुदास होकर माननेवाले ऐसे जैन हैं। उन्हें जैन

कहते हैं। नामधारी जैन, हम (जैन में) जन्में, हम जैन हैं – ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! गजब व्याख्या!

**सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के उपजीवक...** उनके चरण के दास के दास, चरण के दास। चरण अर्थात् पैर। उनके दास के दास। आहाहा! चरणरूपी कमल, उनके दास के दास। आहाहा! उन्हें यहाँ जैन कहा जाता है। **परमार्थ से गणधरदेव आदि ऐसा उसका अर्थ है।** जैन उन्हें कहा जाता है। परमार्थ से गणधरदेव, सच्चे मुनि—तीन कषाय का अभाव, समकिती, श्रावक सच्चा समकिती, उन्हें यहाँ परमार्थ से जैन कहा जाता है। बाकी वाड़ा में रहे, उन्हें जैन नहीं कहा जाता। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

**परमार्थ से गणधरदेव आदि ऐसा उसका अर्थ है। उन्होंने ( -गणधरदेव आदि... )** मुनि, समकिती। दूसरे सब समकिती इत्यादि जैन हैं। आहाहा! **उन्होंने ( -गणधरदेव आदि जैनों ने ) कहे हुए जो समस्त जीवादि तत्त्व...** समस्त जीवादि नव तत्त्व। **उनमें जो परम जिनयोगीश्वर...** आहाहा! **निज आत्मा को लगाता है,...** आहाहा! उन नव तत्त्वों का ज्ञान करके आत्मा के साथ जोड़ता है। ज्ञान की पर्याय को आत्मा के साथ जोड़ता है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय को राग के साथ और बाहर समझाने के लिये नहीं करता। आहाहा!

**( -गणधरदेव आदि जैनों ने ) कहे हुए जो समस्त जीवादि तत्त्व उनमें जो परम जिनयोगीश्वर...** आहाहा! परम जिनयोगीश्वर – ऐसी भाषा ली है। मुनि की विशेष बात है। **निज आत्मा को लगाता है,...** आहाहा! अपने आत्मा को जोड़ता है। **उसका निजभाव ही परम योग है।** आहाहा! वीतरागी आत्मा, उसे वीतरागी पर्याय से जोड़ना... आहाहा! वह परमयोग है। जुड़ान करना, वीतरागीस्वरूप आत्मा है, उसका वीतरागी पर्याय से जुड़ान करना, इसका नाम योग और जैन कहा जाता है।

विशेष कहेंगे.... ( ***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)